अलगनी पर औरतें

(दुष्चक्र, कुप्रथाएँ, प्रताड़ना और षड्यंत्र)

संपादक

कुसुम त्रिपाठी

Scanned by CamScanner

अलगनी पर औरतें

(दुष्चक्र, कुप्रथाएँ, प्रताड़ना और षड्यंत्र)

संपादक

कुसुम त्रिपाठी

अगोरा

Scanned by CamScanner

ISBN : 9789388695350 (सजिल्द)
9789388695336 (अजिल्द)

सर्वाधिकार सुरक्षित
© कुसुम त्रिपाठी
प्रथम संस्करण 2020

मूल्य : 499 रुपये (सजिल्द)
200 रुपये (अजिल्द)

अगोरा प्रकाशन
ग्राम- अहिरान, पोस्ट - चमाँव, शिवपुर
जिला- वाराणसी 221 003 (उत्तर प्रदेश)
मो. : 09479060031

संपादक मंडल : कुमार विजय, रामजी यादव, अपर्णा।
आवरण चित्र : Maysoon al Gburi
आवरण सज्जा : अमन विश्वकर्मा

Email : agoraprakashan001@gmail.com
अगोरा प्रकाशन के लिए अपर्णा द्वारा, शारदा प्रेस, सी. 27/22, जगतगंज, वाराणसी से मुद्रित।

Algani Per Auraten
Editor : Kusum Tripathi

Scanned by CamScanner

विषय-सूची

1. विधवा स्त्रियाँ: सामाजिक सरोकार
प्रो. आशा शुक्ला 15
2. स्त्री शोषण का धार्मिक रिवाज : जोगन प्रथा
डॉ. रेखा पाण्डेय, **अनुवाद** - सर्जना चतुर्वेदी 35
3. स्त्री देहयात्रा वाया बेड़िया समाज और सत्तावादी विमर्श
डॉ. भारती शुक्ला 55
4. देवदासी प्रथा : नया राज्य, नये कानून और पुरानी परंपरा
स्वातीजा मनोरमा 71
5. चुड़ैल और डायन प्रथा : एक स्त्रीवादी नजरिया
सिराज बलसारा प्रभु, **अनुवाद** - सर्जना चतुर्वेदी 84
6. स्त्री खतना: एक अमानवीय प्रथा
भुवेन्द्र त्यागी 104
7. छत्तीसगढ़ से नहीं मिटा टोनही का अभिशाप
तुहिन देब 121
9. बहुपति प्रथा
क्वलीन काकोती 138
10. सम्मान के लिए प्रताड़ना और हत्या
अंजलि सिन्हा 147
11. भारतीय लोक परंपराओं में महिलाएँ
डॉ. अस्मिता राजुरकर 158
12 महिलाएँ और मंदिर प्रवेश
डॉ. मनोज कुमार गुप्ता 178
13 ब्लाउज पहनने के लिए केरल की महिलाओं का संघर्ष
कुसुम त्रिपाठी 195

Scanned by CamScanner

महिलाएँ और मंदिर प्रवेश

डॉ. मनोज कुमार गुप्ता

भारतीय हिंदू सामाजिक संरचना और कार्य प्रणाली वैदिक मान्यताओं से संचालित रही है। वर्ण एवं जाति श्रेणी क्रमों की विभिन्न श्रेणियाँ भारतीय जन-मानस को विभाजित कर वर्चस्व की स्वतः स्वीकार्य मनो-सामाजिक भूमिकाएँ तय करने में सफल होती चली आयी हैं। वर्ण व्यवस्था का अनुपालन करती कठोर धर्मशास्त्रीय आचार संहिताएँ वर्षों से भारतीय जीवन को प्रभावित करती रही हैं, जो अधिशेष रूप में आज भी सामाजिक कार्य-व्यवहार में मौजूद हैं। उत्पीड़क और उत्पीड़ित के बीच सत्ता, सहयोग, दण्ड एवं प्रतिरोध संबंधित कठोर प्राचीनतम प्रावधान धार्मिक संहिताओं में दर्ज हैं। सत्ता और शक्ति की ऐतिहासिक यात्रा में इन संहिताबद्ध प्रावधानों के भौतिक अनुशीलन को देखा जा सकता है। रणजीत गुहा भी इसी संदर्भ में कहते हैं कि "एक लंबे समय तक बार-बार इस्तेमाल होकर, मजबूत तथा आम बन गए, ये नियम प्रायः अपने मूल कार्य की उपयोगिता खोकर भी आने वाली संस्कृतियों के दौरान केवल अवशेष के रूप में ही नहीं, बल्कि निर्धारक इकाइयों के रूप में सक्रिय रहते हैं(रणजीत गुहा; *निम्नवर्गीय प्रसंग* 2007)।" समय और समाज का उत्तरोत्तर बदलाव, भले ही हमें इस सदी से उस सदी में धकेलता चला जाए लेकिन धार्मिक जड़ताएँ, जातीय पदानुक्रमिकता और शुद्धता बोध की रूढ़िवादी मान्यताएँ हर बार हमें कई कदम पीछे ले आकर खड़ा कर देती हैं। शुद्धता एवं अशुद्धता की पूरी संरचना को बड़ी चालाकी से जाति, लिंग, एवं जेंडर की अपरिभाष्य निषिद्धताओं के फेम में ठूँस दिया गया है। लुइस ड्यूमोंट मानते हैं कि, दरअसल, शुद्धताबोध ही हिंदू धर्म के संस्थानीकरण की मजबूती का मूलभूत तर्क है। दैहिक एवं कर्मकाण्डीय शुद्धता बोध के स्तर पर महिलाओं की स्थिति और भी दयनीय दिखाई पड़ती है, जो कथित रूप से उनकी जैविकीय संरचना के आधार पर तय की जाती रही है।

अस्पृश्यता के वर्चस्वशाली समाजशास्त्र की अमानवीय विकासयात्रा को जातियों-उपजातियों में विभाजित भारतीय समाज के निचले पायदान पर अवस्थित

Scanned by CamScanner

समूहों और महिलाओं पर थोपे गये कथित आदर्शों में आसानी से देखा जा सकता है। सही मायने में देखा जाय, तो ये लोग किसी भी रूप में उच्च आदर्शवादी हिंदू अभिजातों में शामिल नहीं होते। जाति व्यवस्था के शीर्षस्थ समुदायों द्वारा धार्मिक ग्रन्थों, उपासना स्थलों की पवित्रता की परिसीमाओं तथा खास उद्देश्य से विकसित लोक जनश्रुतियों के माध्यम से व्यवस्था की निचली पायदान के लोगों को इहलोक-परलोक की रोमांचकारी अनुभूतियों, पाप-पुण्य के काल्पनिक भय आदि के नाम पर दासत्व की स्थिति में रखा गया। अस्पृश्यता की शुरुआत अतीत के किस खास बिन्दु से हुई। इसकी ठीक-ठीक जानकारी तो नहीं मिलती लेकिन इतिहासकारों ने हिंदू धार्मिक ग्रन्थों में लिपिबद्ध संहिताओं में इसकी जड़ों को तलाशते हुए कई तथ्यों को उजागर किया है। ऋग्वेद के पुरुष सूक्त में चार वर्णों का जिक्र मिलता है। व्यवस्था में पहले पायदान पर आसीन समुदायों द्वारा रक्त शुद्धता और निरंतर वर्चस्व की स्थिति बनाए रखने के निहित उद्देश्यों को आमजन की सहज स्वीकृति में तब्दील करने हेतु वर्ण व्यवस्था को दैवीय आदेश के रूप में लागू कर हाशिए के लोगों की सामाजिक गतिशीलता की सीमा रेखाएँ सुनिश्चित की जाने लगीं। स्त्री-पुरुष, ऊँच-नीच, छुआ-छूत के बीच प्रचलित वर्जनाओं, तमाम सामाजिक संबंधों का पुनर्रुत्पादन ब्राह्मणवादी हिंदू धर्म की मूल ग्रंथि से परिलक्षित होता आ रहा है, जिसकी अपनी सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक विश्वदृष्टि रही है।

धर्म की समाजशास्त्रीय संरचना और महिलाएँ

भारतीय विचार परंपरा में शास्त्र बहुत ही आकर्षक विषय रहा है। धर्म आधारित वैचारिकता की भौतिक परिणति में ऋग्वैदिक मान्यताओं का पोषण होता आया है। वैदिक-उपनिषदीय संहिताएँ न सिर्फ धार्मिक दायरे तक सीमित रहीं बल्कि, इनका प्रभाव लोगों के सामाजिक, राजनैतिक एवं आर्थिक जीवन पर भी पड़ा है। वर्ण आधारित भारतीय सभ्यता का विकास धार्मिक परवरिश में हुआ है, जो कि अपने मूल में ही वर्चस्वशाली प्रवृत्ति की रही है। इस वर्ण आधारित समाज में महिलाओं को या तो इतना महिमामंडित कर दिया गया, कि वे देवी बन गयीं या उनका शोषण और तिरस्कार कर दासी बना दिया। उन्हें एक व्यक्ति के रूप में रहने ही नहीं दिया गया, जो कि आज तक हमारे परिवेश में मौजूद है। मंदिर संस्कृति में यदि हम एक स्त्री की उपस्थिति पर गौर करें, तो उन्हें या तो देवी बनाकर मंदिरों में सजा दिया गया है या फिर देवताओं की दासी बनाकर पंडा-पुजारियों की सेवा में लगा दिया जाता रहा है। आखिर, पुरुष देवता की तरह और स्त्री को देवी के रूप में स्थापित किया जा सकता है, तो फिर स्त्रियों को मंदिर का मुख्य पुजारी बनाये जाने में बाधा उत्पन्न

Scanned by CamScanner

होना, किस बराबरी का उदाहरण है? इस पर अब तक धार्मिक झंडाबरदारियों का ध्यान क्यों नहीं गया। इसलिए कि यह पूरी की पूरी जमात पुरुषवादी मानसिकता की अग्रवाहक है। महिला दृष्टि से कभी धर्म और धार्मिक संस्थाओं की संरचना को रखा ही नहीं गया। किसी भी देश अथवा समुदाय के सांस्कृतिक विकास में धर्म का महत्त्व बताने के क्रम में, अक्सर इस बात को भुला दिया जाता है कि, जाति, वर्ग और जेंडर की निहित जटिलताओं को सिंचित करने में भी धर्म का बड़ा योगदान है।

डॉ. अंबेडकर *हिन्दू धर्म की पहेलियाँ* में वैदिक और पौराणिक देवियों के बीच एक विरोधाभास दर्शाते हुए लिखते हैं कि वैदिक देवियों की औपचारिक पूजा देवताओं की पत्नियाँ होने के नाते की जाती थी, जबकि पौराणिक देवियों की पूजा का आधार उनका अपना था (डॉ. अंबेडकर, पृ.104)। इन देवियों का रणकौशल और उनकी वीरता इनकी पूज्यनीयता का आधार था। दुर्गा, काली, चंडी आदि पुराण कालीन देवियों का प्रादुर्भाव देवशक्तियों से ही हुआ, ऐसा धर्मग्रंथों में वर्णित है। वैदिक और पौराणिक देवियों में, पौराणिक देवियों को युद्धभूमि में उतरने की क्या आवश्यकता आन पड़ी, जबकि वैदिक साहित्य में भी देवताओं और असुरों के बीच संग्राम की चर्चा मिलती है, लेकिन वहाँ देवियों के रणभूमि में आने का खास जिक्र नहीं मिलता। क्या पौराणिक देवता कमजोर हो गये थे? जबकि, वही देव वैदिक युग में असुरों से लड़े थे। यहाँ, एक सवाल यह भी उठता है कि वह कौन सी शक्ति पौराणिक देवियों में थी, जो वैदिक देवियों में नही थी? कथाओं में यह भी मिलता है कि इन सभी शक्तियों की उत्पत्ति देवताओं में निहित शक्तियों से ही हुई है। मदालसा जैसी सती की प्रतिष्ठा का महिमामंडन भी उसके पतिव्रता होने के कारण ही किया जाता है, जो इन्हीं मान्यताओं का अनुसरण करता दिखायी पड़ता है। वहीं, ऐसे भी उदाहरण मिलते हैं, जो नारी को निकृष्ट साबित करने में कोई कसर नहीं छोड़ते। जैसे - *सतपथ ब्राह्मण* में(3/2/4/6) कहा गया है कि, यज्ञ के समय कुत्ता, शूद्र और नारी की ओर नहीं देखना चाहिए(शर्मा,गीतेश पृ.161)। *मैत्राणयी संहिता* (3/8/3) और *तैत्तरीय संहिता* (6/5/8/2) में स्पष्ट लिखा है, कि नारी अशुभ है (शर्मा,गीतेश पृ.161)। इन उद्धरणों से साबित होता है कि धार्मिक हलकों में स्त्री और देवी की जो छवियाँ प्रस्तुत की गयी हैं, वो अपने आप में कितनी अतार्किक हैं। रणचंडी के अवतार की आवश्यकता असुरों से लड़ने के लिए पड़ती है, लेकिन उसमें निहित शक्ति देवताओं की है। सृष्टि की रचना हेतु स्त्री का साथ जरूरी है, लेकिन उसकी पतिव्रता होने की शर्त पर। अक्षत-यौवना और शास्त्र-सम्मत आचरण वाली स्त्री का ही महिमामंडन किया गया है। अंबेडकर आशंका जाहिर करते हैं कि, क्या ब्राह्मणों ने बाजार में एक और बिकाऊ माल के तौर पर देवी पूजा प्रारम्भ नहीं किया (डॉ.

Scanned by CamScanner

अंबेडकर, पृ.108)। इसी फैन्टेसी के सहारे ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक परंपरा का संचालन किया जाता रहा है।

20वीं सदी के अंतिम दशकों में, जब पूरी दुनिया में नारीवादी विमर्श अकादमिक और समाजवैज्ञानिक बहसों के बरअक्स खड़ा हो रहा होता है, तभी धर्म के समाजशास्त्रीय अध्ययन पर भी इसकी नजर जाती है। धार्मिक हलकों में महिलाओं की कमतर स्थिति से जुड़े विभिन्न अध्ययनों में यह भी पाया गया है कि महिलाएँ पुरुषों से अधिक धार्मिक होती हैं। दुनिया भर में धार्मिक अनुपालन और अनुयायियों के रूप में महिलाओं की अधिकता के बावजूद धार्मिक नेतृत्त्व पुरुषों के हाथ में है। नारीवादी नजरिए से धर्म के समाजशास्त्र पर लिखे गए एक लेख में, युगोस्लाविया के संदर्भ में, पता चलता है कि 70 प्रतिशत महिलाएँ चर्च की अनुयायी हैं, इसके बावजूद चर्च में पुरुष पादरी ही मिलते हैं। चर्च से जिस प्रकार महिलाओं को बाहर रखा गया है, उसी परंपरा के तहत मंदिर संस्कृति में भी। पुरुष नेतृत्त्व में चल रहे धार्मिक रथों को सदियों से महिलाएँ क्यों खींचती रहीं हैं, जिसका पूरा का पूरा ढाँचा ही जेंडरगत गैर-बराबरी पर खड़ा है। दरअसल, नारीवाद इसी का हल तलाशने की दिशा में कार्यरत है। हाल ही में महिलाओं की अगुआई में चलाया गया मंदिर प्रवेश आंदोलन भी धार्मिक संस्थाओं के पुरुषवादी नेताओं के खिलाफ उठाया गया एक कदम था। नारीवादी सिद्धांत समाज, संस्कृति, धर्म, राजनीति और उत्पादन आदि के स्तर पर महिलाओं के पक्ष को स्पष्ट करने की ठोस राजनीतिक मुहिम है। इस आंदोलन से जुड़ी एक कार्यकर्ता की मानें, तो यह मुहिम न तो पुरुषों के खिलाफ है, न धर्म अथवा अन्य के, लेकिन यह उन सभी व्याख्याओं के खिलाफ है, जो महिलाओं को पुरुषों से कमतर होने की वकालत करती हैं। इस पर लोगों की अपनी-अपनी राय हो सकती है, लेकिन यह तो स्पष्ट है कि ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक परिवेश ने तमाम विषमताओं को धर्मोचित आचार-संहिताओं के जरिए वैधानिकता प्रदान की है। यही नहीं, इन संहितागत वैधानिकताओं के अनुपालन हेतु कड़े दंड-विधान का प्रावधान भी किया गया है। महिलाओं की उपेक्षा केवल धर्मों में ही नहीं, बल्कि विकास और आधुनिकता की ओर जाने वाली सीढ़ी के हर पायदान पर हुई है।

यदि हम धार्मिक परिप्रेक्ष्य में देखें, तो मोटे तौर पर किसी भी समाज में दो विचार परंपरा के लोग होते हैं। एक, परंपरावादी विश्वास वाले और दूसरे, आधुनिकतावादी। परंपरावादियों का मानना है कि धर्म में स्त्री-पुरुष समानता है, धर्म अपने आप में बहुत ही लोकतांत्रिक है, और इसमें जो कुछ विविधताएँ हैं, वह नियति आधारित हैं। जबकि, आधुनिकतावादियों के यहाँ तर्कशीलता का महत्त्व है। पवित्रता बोध की धार्मिक मन्यताओं में पुरुष जाति की पवित्रता सभी धर्मों में सर्वोपरि है, जबकि

Scanned by CamScanner

महिलाओं के संदर्भ में ऐसा कहीं नहीं दिखता। सृष्टि की रचना या नैतिक बोध के सिद्धांतों का प्रतिपादन करने वाले देवता पुरुष रूप में ही स्वीकार किये गये हैं, जबकि देवियों के रूप में उन आदर्श स्त्रियों को शामिल किया गया है, जो पवित्रता, पतिव्रता, ममतामयी आदि छवियों की वाहक हैं। धार्मिक एवं सांस्कृतिक सरचनाओं में महिलाओं की यौन शुचिता और पवित्रता को सबसे अधिक महिमामंडित किया गया है। लोक जनश्रुतियों में सती सावित्री, पार्वती, सीता जैसी बहुत सारी देवियों का जिक्र उनके आदर्श स्त्रियोचित गुणों के आख्यानों के रूप में सुनने को मिलता है। जबकि, सारे सत्ता प्रतिष्ठान अपने चारित्रिक गुणों में स्त्री विरोधी ही रहे हैं। ऐसा होने के पीछे एक तर्कसंगत कारण यह भी है कि, इन सबका संचालक और मुखिया प्रायः कोई न कोई पुरुष ही रहा है। सत्ता के समाजशास्त्र (धार्मिक सत्ता, राजनीतिक सत्ता, वैदिक सत्ता आदि) पर पितृसत्तात्मक एकाधिकार इसलिए भी कायम रहा है कि, इसके वैधानीकरण हेतु लिखे गये ग्रन्थों का रचनाकार भी यही वर्ग रहा है। महिलाओं की जैविक संरचना के आधार पर ही उन्हें अशुद्ध घोषित कर दिया गया है। यौनावस्था में आते ही हमारी पारंपरिक सामाजिक निषिद्धताएँ एक स्त्री को चारों तरफ से अपनी गिरफ्त में ले लेती हैं, जो ताउम्र उन्हें मुक्त नहीं होने देतीं। मेन्सट्रुएशन (मासिक धर्म) के दौरान महिलाओं के साथ अछूत जैसा व्यवहार दुनिया की तमाम सभ्यताओं में प्रचलित रहा है। अरब में मंगलवार के दिन को खून के दिन के रूप में माना जाता है। वहाँ पुरानी मान्यता है कि इसी दिन पहली बार हव्वा(ईव) को मेन्सट्रुएशन हुआ था। इस दौरान महिलाओं का किसी वस्तु को छूना अच्छा नहीं माना जाता। आस्ट्रेलिया में इस दौरान महिलाओं को उन चीजों तक को, छूने की औपचारिक मनाही होती है, जिसे पुरुषों द्वारा प्रयोग किया गया हो। यहाँ तक कि पुरुषों की तरह चलने की भी मनाही रही है। हालाँकि, कुछ धार्मिक विधानों में न सिर्फ मासिक धर्म के दौरान महिलाओं की अशुद्धता की बात है, बल्कि पुरुषों के स्खलित होने की स्थिति पर उन्हें भी अशुद्ध माना जाता है। लेकिन पुरुषों की इस अशुद्धता अथवा अपवित्रता से उनकी सामाजिक प्रतिष्ठा में कोई फर्क नहीं पड़ता, जबकि महिलाओं के साथ हर महीने यह जैविक क्रिया एक सामाजिक कलंक के रूप में आती है।

धर्म का राजनीतिक अर्थशास्त्र

धर्म के आर्थिक पक्ष पर वैज्ञानिक बहस की शुरुआत भले ही हालिया कुछ वर्षों में तेज हुई हो लेकिन, धार्मिक अर्थव्यवस्था के विभिन्न पक्षों पर शोध करने वाले अर्थशास्त्रियों का मानना है कि, इसकी जड़ें बहुत प्राचीन हैं। आर्थिक गतिविधियों

Scanned by CamScanner

को पुनर्संचालित करने और उसे गतिशील बनाये रखने में धर्म की ऐतिहासिक भूमिका रही है। ये सारी चीजें बेवजह ही नहीं रहीं हैं, बल्कि इनकी संरचनागत परवरिश की गयी है। *अर्थशास्त्र* में कौटिल्य ने राजा को कुछ ऐसे तरीके सुझाए हैं, जिनसे वह जनता में धार्मिक आस्था को विकसित कर अपनी आर्थिक पूँजी को समृद्ध बना सकता है। एडम स्मिथ, जिन्हें *अर्थशास्त्र* का जनक माना जाता है, भी धर्म को राष्ट्र की समृद्धि से जोड़ते हैं। प्रागैतिहासिक काल से लेकर आधुनिक सभ्यता तक में धर्म, सामाजिक संस्कृति का एक अहम हिस्सा रहा है, जिसका सामाजिक परिवेश में प्रभावी हस्तक्षेप आज भी दिखता है। धार्मिक संस्कृति का आर्थिक प्रणाली से बहुत ही गहरा संबंध है। इसका समाजशास्त्रीय विश्लेषण करते समय, हमें अर्थ आधारित धार्मिक भूगोल को जाति, वर्ग और जेंडर की कसौटियों पर कसकर देखना होगा। संभवतः यही वह मुकम्मल रास्ता होगा, जिसके सहारे धर्म और इसके संस्थागत ढाँचे में व्याप्त पुरुषवादी वर्चस्व की जड़ों तक पहुँचा जा सकता है।

अतीत के पन्नों को पलटकर देखने पर साफ जाहिर होता है कि, प्राचीन काल में मंदिर न सिर्फ पूजा स्थल के रूप में रहे हैं, बल्कि यह मान्यता प्राप्त धार्मिक संस्थान आर्थिक, सामाजिक एवं राजनीतिक गतिशीलता के केंद्र भी रहे हैं। कमोबेश, आज भी इनकी भूमिका वही है। हम यह भी कह सकते हैं कि राजनीतिक खेमों में इसकी संरचनागत भूमिकाएँ और भी जटिल हुई हैं। सभ्यता के विकास के साथ ही इबादतगाहों, पूजास्थलों की, दुनिया के तमाम देशों और सभ्यताओं में अलग-अलग नामों और पहचानों के रूप में, उपस्थिति का प्रमाण मिलता है। वी. गॉर्डन मिस्त्र, रोम, बेबीलोन और भारत में वाराणसी, राजगढ़ या पाटलिपुत्र, जो कि बौद्धिज्म की देन हैं, आदि का उदाहरण देते हुए आधुनिकता, शहरीकरण के विकास में कुछ हद तक मंदिरों, स्तूपों, चर्च आदि के योगदान की बात करते हैं। दुनियाभर की सभ्यताओं को धार्मिक संस्थाएँ अपने तरीके से प्रभावित करती रहीं हैं। इन धार्मिक सत्ता प्रतिष्ठानों की केंद्रीभूत सामाजिक-आर्थिक गतिविधियों एवं नियम-कायदों से लोग प्रभावित होते रहे हैं। खासकर, उन समूहों पर इन सत्ता प्रतिष्ठानों का प्रभाव अधिक पड़ा है, जो सामाजिक संरचना में हाशिए पर रहे हैं। इनमें महिलाओं की स्थिति दुविधापूर्ण रही है। मंदिर-संस्कृति को धार्मिक संस्कृति का उप समुच्चय माना जा सकता है ,जो एक प्रकार का सफेदपोश व्यापार भी है। हिन्दू धर्म के इस संस्थागत व्यापार की चाभी वर्ण आधारित व्यवस्था में शीर्ष पर रहे लोगों के हाथ में ही रही है। वृहत्तर सामाजिक दायरे में भिन्न-भिन्न समूहों के लोग अपनी अलग-अलग धार्मिक पहचानों और धार्मिक विश्वासों के साथ रहते आये हैं। धार्मिक संस्कृति किसी भी समुदाय के खान-पान, रहन-सहन, निजी एवं सार्वजनिक जीवन से जुड़े कार्य-व्यवहार के साथ

Scanned by CamScanner

उनके पूरे सामाजिक परिवेश का निर्धारण करती है। जिसका प्रभाव उस समुदाय के सभी सदस्यों पर पड़ता है, भले ही उनमें से कुछ लोग इसे मानें या न मानें। ऐसे में, हम यह कह सकते हैं कि धार्मिक संस्कृति कहीं न कहीं सामाजिक संस्कृति को गहरे से प्रभावित करती है।

ईश्वर और इंसान के बीच की कड़ी माने जाने वाली, मंदिर संस्कृति को आर्थिक दृष्टिकोण से देखा जाय, तो कई ऐसी गतिविधियाँ हैं, जिनका संबंध आमदनी के विभिन्न स्रोतों से है। इससे जुड़ने वालों का एक समूह वह है, जो धार्मिक आस्था से जुड़ता है, और दूसरा रोजगारी वर्ग है, जो बिना आस्था के जुड़ता है, जिसका मुख्य उद्देश्य होता है - व्यापार। भारत में हिन्दू मंदिरों की आर्थिक मामलों में एक समृद्ध परंपरा रही है, और इस अर्थसत्ता पर ब्राह्मण पुरुषों, पंडा-पुजारियों का ही एकाधिकार रहा है। पिछले वर्षों चर्चा में आये- पद्मनाभ स्वामी मंदिर, शिर्डी साईं मंदिर या शनि शिगणापुर जैसे बहुत सारे मंदिर ट्रस्टों के पास अकूत संपत्ति है। ब्राह्मणवादी पितृसत्तात्मक धार्मिकता की तथाकथित आदर्शवादी, नैतिकतावादी और शुद्धताबोध की मानकीकृत सीमाएँ, धार्मिक सत्ता तक किसी अन्य की पहुँच को दुरूह बनाती हैं। यदि, कोई ऐसी कोशिश भी करता है अथवा ऐसी सोच भी रखता है, तो उसे ये संगठित लोग पूरी एकजुटता के साथ परास्त कर देने का व्यूह रचते हैं। गौरतलब है कि, महिलाओं को परंपरागत मान्यताओं के आधार पर आर्थिक स्वावलंबन अथवा आर्थिक निर्णयों से दूर ही नहीं रखा जाता रहा, बल्कि उन्हें तो धार्मिक संहिताओं में अशुद्धता का पर्याय माना गया है। इन रूढ़ियों के चलते महिलाओं को मंदिर अथवा किसी अन्य धार्मिक संस्था की संपत्ति पर मालिकाना हक से पहले से ही दूर रखा गया है। किसी भी सत्ता प्रतिष्ठान का अपना राजनीतिक अर्थशास्त्र होता है, जो उसके बने रहने के तरीके और संसाधन मुहैया कराता है। सर्वविदित है, मंदिर भी धार्मिक सत्ता की एक मजबूत कड़ी है। यह धर्म को आर्थिक राजनीतिक दृष्टि से मजबूत बनाने का अहम माध्यम रहा है।

मानव सभ्यता के विकास की उस अवस्था में पितृसत्ता अपनी जड़ें जमाना शुरू कर चुकी थी, जब भोजन इकट्ठा करने, कृषिभूमि आदि के देखभाल की सामूहिक जिम्मेदारी एवं सामूहिक रहवास की जगह, कृषिभूमि निजी संपत्ति में तब्दील हो रही थी। राजनीतिक शक्ति राजा में निहित हो रही थी और संयुक्त परिवार कुलपति के नियंत्रण में आ रहा था। संभव है, सभ्यता की विकासयात्रा के इसी दौर में महिलाओं का विशिष्ट स्थान, पुरुषों के मुकाबले कम होता गया हो। और पुरुष महिलाओं के पुनरुत्पादन की दैवीय शक्ति को बड़ी चालाकी से उनकी कमजोरी और अपनी श्रेष्ठता का सूत्र मानते हुए, उनकी गतिशीलता और संसाधनों तक बराबर की पहुँच को

Scanned by CamScanner

सीमित करने लगे। नारीवादी नृविज्ञानियों और इतिहासकारों का मानना है कि, पितृसत्ता ने अपनी जातीय श्रेष्ठता को सुदृढ़ करने के लिए जबरदस्ती स्त्रियों की शुचिता अथवा पवित्रता का विचार प्रस्तुत किया। धीरे-धीरे इसने अपनी जड़ें जमाने के क्रम में महिलाओं को, उनकी चिकित्सा और भविष्यवाणी की शक्ति व ज्ञान के लिए, दंडित किया जाने लगा। मध्ययुगीन काल में बहुत सी महिला चिकित्सकों और दाइयों को चुड़ैल आदि कहकर जलाया अथवा मार दिया गया। पितृसत्तात्मक ताकतों का धर्म के सहारे महिलाओं पर स्वीकार्य राजनीतिक वर्चस्व कायम रखने की सोची-समझी चाल के तहत, ये सभी तरीके आजमाये जाते रहे हैं। महिलाओं को इन जटिल व्यूह-रचनाओं को पार करते हुए अपने लिए एक राजनीतिक जगह सुनिश्चित कर पाना कठिन होता है। लेकिन, इस राजनीतिक मौजूदगी के बिना उन्हें मनुष्यता के अधिकारों से दूर किया जाता रहेगा, जो अब तक की यात्रा में साफ देखा गया है। वर्तमान सबआल्टर्न बहस सामाजिक-आर्थिक एवं राजनैतिक मौजूदगियों के विकेन्द्रीकरण के पक्ष में जारी है।

शुद्धताबोध

महिलाओं के संदर्भ में नीच और अशुद्धता की आम अवधारणा के प्रसार पर ही पितृसत्ता की मजबूत दीवार टिकी है, जो महिलाओं की अधीनता का प्रमुख कारण भी साबित होता आया है। पुरुषवादी सोच का मानना है कि महिलाएँ ऐसी दुष्टता की प्रतिमूर्ति होती हैं, जो पुरुषों को उस समय आकर्षित अथवा मोहित कर सकती हैं, जब वे पूरी तरह पूजा-ध्यान में तल्लीन हों। धार्मिक जनश्रुतियों एवं ग्रंथों के हवाले से हमें ऐसे कई उदाहरण मिलते हैं, जब देवताओं-ऋषियों के तप को स्त्रियों ने भंग किया है। हम बचपन से बड़े होने के दौरान ऐसी तमाम कहानियों से गुजरते हैं। यहूदी परंपरा की एक प्रचलित और विवादित कहानी, जिसमें हव्वा द्वारा आदि पुरुष को बार-बार प्रलोभन देकर पाप की ओर धकेलने की कोशिश का जिक्र मिलता है, वह पूरी मानवता के पतन का कारण बनाता है। क्योंकि हव्वा के प्रलोभन के कारण आदि पुरुष ऐडम और हव्वा दोनों को अदन के खूबसूरत बगीचे से निकाल दिया जाता है। विभिन्न सभ्यताओं और धर्मों में यह स्त्रियों खिलाफ एक विषय बन गया।

हिन्दू धर्म में निहित जाति संरचनाएँ, अपने अस्तित्व को बचाये रखने और पदानुक्रमिक वर्चस्व की स्थिति को बनाए रखने के लिए, तमाम निषिद्धताओं को जन्म देती रही हैं। शुद्धता बोध की व्यापक संकल्पना भी इन्हीं निषिद्धताओं में से एक है। खान-पान, रहन-सहन से लेकर वैवाहिक मान्यताओं एवं स्त्री-पुरुष संबंधों तक में इसका हस्तक्षेप आज भी है। बचपन से लेकर बड़े होने की परवरिश में हजारों वर्षों

Scanned by CamScanner

से चली आ रही शुद्धता की सहज स्वीकार्य मान्यताओं ने एक खास प्रकार की सत्ता संरचना को स्थापित किया है। इसने न सिर्फ वर्चस्व स्थापित किया है, बल्कि कमजोर वर्ग के भीतर पाप-पुण्य, इहलोक-परलोक के डर और गढ़े गये सामाजिक दंड विधानों के जरिए लोगों में एक ऐसे भय का जाल रचा है, जिससे बाहर निकलने का कोई आसान तरीका फिलहाल नहीं दिखता। जातीय महाजाल, देववाद, अध्यात्मवाद, प्रतिशोध आदि में गुँथी शताब्दियों की इस शोषणकारी यात्रा में प्रताड़ित किये गये लोगों की आवाजों की तीव्रता को महसूस किये जाने का दौर जरूर शुरू हो गया है। ऐतिहासिक पड़ताल से कुछ ऐसे तथ्यों का पता चलता है कि आर्यों की तमाम मान्यताओं - जैसे पूजा पद्धतियों, पुनर्जन्म की अवधारणा आदि का उपादान निग्रीटों और आग्नेयों की प्रकृति (वृक्ष पूजा, लिंग प्रतीक) में आस्था और कृषि कर्म के परिष्कृत स्वरूप में हुआ है। हिन्दू धर्म में सुहाग का प्रतीक माने जाने वाले सिंदूर के संदर्भ में एक तथ्य यह है कि, पहले आग्नेय जातियाँ बलि दिये गये पशु के रक्त को माथे पर लगाती थीं। बाद में यह रिवाज सिंदूर में बदल गया।

वास्तव में विवाह के अवसर पर 'सिंदूर दान' का न तो कोई वैदिक मंत्र है और न सिंदूर का कोई वैदिक नाम है (सरोज, रामचन्द्र 2007, पृ.5)। घुर्ये जैसे विद्वान जाति प्रथा के विकास में इंडो-आर्यन संस्कृति के उदय एवं आर्यों द्वारा अपनी रक्त शुद्धता को बचाये रखने के क्रम में हुआ मानते हैं। पराजित समूहों को दीर्घावधि तक निम्न और खुद को विशिष्ट बनाये रखने हेतु जाति व्यवस्था की जटिलताओं को मजबूत बनाने की लगातार कोशिश की जाती रही। यह माना जाता है कि दैवी सिद्धांत के रूप में वर्ण व्यवस्था का प्रतिपादन गुणकर्म के आधार पर किया गया था, लेकिन यह महाकाव्यों तक आते-आते जन्म आधारित हो गयी। विंन्टर नित्ज का कहना है कि, वेदों में पशुपालन, कृषि तथा व्यापारों और उद्योगों के साथ युद्ध के वीरोचित कार्यों एवं यज्ञों का प्रभूत वर्णन है, परंतु सूक्तों में उस जाति-पाति की चर्चा नहीं है, जो परवर्ती काल में विकसित हुई (सरोज, रामचन्द्र 2007, पृ.7)। वैदिक काल से लेकर सूत्रकाल तक खान-पान, शादी-विवाह पर संहिताबद्ध निषेध नहीं के बराबर मिलता है। *रामायण, महाभारत, मार्कण्डेय* आदि में आर्येत्तर जातियों में आर्य विवाहों का जिक्र मिलता है। धर्म ग्रन्थों की ऐतिहासिक पड़ताल से पता चलता है कि उपनिषद काल से ऐसे सवाल विवादास्पद होने लगे थे, जिनसे शुद्धताबोध या श्रेष्ठता की अवधारणा, वर्ण आधारित समाज की रोजमर्रा की ज़िंदगी को काम के बँटवारे से लेकर उनके खान-पान तक को प्रभावित करने लगी थी।

कच्चा-पक्का भोजन की दो प्रमुख इकाइयाँ शुद्धता के पैमानों में फिट कर दी गयीं। यह अवधारणा भोजन की गुणवत्ता के आधार पर नहीं, बल्कि श्रेष्ठता भाव का

Scanned by CamScanner

आनंद बनाये रखने की खातिर किया गया है। ब्राह्मणवादी पितृसत्ता ने धर्म और धार्मिक संहिताओं में अपनी सुविधा और वर्चस्व हासिल करने के सूत्रों का हर जगह इस्तेमाल किया है। कालांतर में इन सूत्रों का इस्तेमाल जातियों-उपजातियों की विभिन्न कोटियों में वर्चस्वशाली लोगों द्वारा अपने को श्रेष्ठ साबित करने के लिए भी किया जाने लगा। स्त्रियों की सामाजिक प्रतिष्ठा और उनके मनुष्य होने के मूलभूत अधिकारों से उन्हें वंचित करने में भी शुद्धताबोध की जटिलताओं का बहुत व्यापक प्रभाव रहा है। देववाद की अवधारणा के क्रम में एक खास वर्चस्वशाली समूह के लोगों ने धीरे-धीरे इस वर्ण आधारित व्यवस्था के जरिए आधी आबादी को अपनी शर्तों पर जीने के लिए मजबूर किया। इसे बनाये रखने के लिए इस तबके द्वारा अपने पक्ष में तमाम ग्रंथों की रचना कर उसका महिमामंडन किया गया। अशौच (छूत) की स्थितियों को वर्ण और जेंडरगत गैर-बराबरी की संरचना में पिरोते हुए नियमबद्ध कर, उसकी सामाजिक स्वीकारोक्ति सुनिश्चित की जाने की लगातार कोशिश की जाती रही है। इन तथाकथित जड़ीभूत मान्यताओं के अनुसार मासिक धर्म के दौरान लगभग सभी हिन्दू जातियों में महिलाएँ अशौच की स्थिति में मानी जाती हैं। रसोईघर, पूजाघर आदि में इनका प्रवेश वर्जित होने के साथ, इस दौरान कई अन्य निषिद्धताएँ हिन्दू स्त्रियों पर लागू होती हैं। शुद्धता बोध से जुड़ी ये मान्यताएँ सबलीकरण की संभावनाओं का भी निर्धारण करती हैं। हिन्दू परंपराओं में भौतिक और आध्यात्मिक जन्म के बीच भिन्नताओं की बारीकियों को देखने से साफ जाहिर होता है कि, ये स्त्री-पुरुष के बीच सत्ता संरचना की सीमाएँ तय करती रहीं हैं। आध्यात्मिक जन्म विशिष्ट रूप से उपनयन या शिक्षा प्राप्ति के साथ श्रेणीबद्ध था। और यह केवल लड़कों या तीन उच्चतर वर्णों के लड़कों और पुरुषों के लिए आरक्षित था (*नारीवादी राजनीति*, पृ.143)।

मनुस्मृति ने पितृसत्ता को मजबूती प्रदान करते हुए, तमाम अमानवीय तर्क गढ़े हैं; स्त्रियों के लिए विवाह करना पुरुषों के उपनयन के समकक्ष था, पति की सेवा करना छात्र होने के समान था और घर के कामों को संपन्न करना पवित्र अग्नि की पूजा-अर्चना के समान बताया गया है (*नारीवादी राजनीति*, पृ.141)। स्त्रियों को धार्मिक संहिताओं के माध्यम से अलग-अलग प्रसंगों में पवित्र संदर्भों की दुहाई देकर शक्तिहीन परिभाषित किया जाना दरअसल, उन्हें विभिन्न सत्ता प्रतिष्ठानों तक पहुँचने से वंचित रखने की पितृसत्तात्मक साजिश थी। शुद्धता की वकालत कर महिलाओं के मंदिर प्रवेश पर निषेध इसी सोची समझी रणनीति का हिस्सा है, जो आज भी देश के बहुतायत मंदिरों अथवा धार्मिक संस्थाओं में लागू हो रहा है। मंदिर प्रवेश आंदोलन से जुड़ी एक कार्यकर्ता की मानें तो, मंदिर महज आराधना स्थल भर नहीं बल्कि इसका अपना एक

Scanned by CamScanner

आर्थिक साम्राज्य है, जिस पर हजारों वर्षों से पुरुषों का एकाधिकार रहा है, जो आज भी फल-फूल रहा है। मंदिरों की अकूत संपत्ति और उसके तथाकथित उत्तराधिकारियों के बीच विवादों से जुड़े कई उदाहरण हमने पिछले वर्षों देखे भी हैं।

पुरोहितवादी वर्चस्व और मंदिर प्रवेश का संघर्ष

भारत में मंदिर प्रवेश का संघर्ष कोई नया नहीं है। भारतीय समाज सुधार आंदोलन और स्वाधीनता आंदोलन के दौरान जाति एवं लिंग आधारित पारंपरिक और धार्मिक गैरबराबरी को समाप्त करने का मुद्दा प्रमुखता से शामिल रहा है। प्रमुख धार्मिक और सार्वजनिक संस्थाओं आदि तक में बिना किसी जातीय, लैंगिक भेदभाव के बराबर हिस्सेदारी की माँग लगातार उठती रही है। वर्ण आधारित हिन्दू व्यवस्था में पुरोहित वर्ग, जो खास जातीय पहचान और सत्ता संरचना के केंद्र से आते थे, का हिन्दू मंदिरों एवं अन्य धार्मिक अनुष्ठानों तथा संस्थाओं पर एकतरफा प्रभुत्व था। मंदिर प्रवेश का मुद्दा राष्ट्रीय एजेंडे के रूप में 1920 में शामिल हो चुका था। महात्मा गाँधी और डॉ. अंबेडकर सरीखे राष्ट्रीय नेताओं को इन मुद्दों को बहस के केंद्र में लाने का श्रेय जाता है। मंदिर प्रवेश की यह मुहिम महज पूजा-अर्चना के अधिकारों का मसला नहीं, अपितु एक बड़े समूह की सामाजिक स्वीकार्यता और उसके आत्मसम्मान की राजनीतिक लड़ाई का हिस्सा था। महात्मा गाँधी ने कोट्टायम पहुँचकर 1924-25 में सत्याग्रह का सफल प्रयोग करते हुए वाइकोम मंदिर में कथित अछूतों का प्रवेश कराया (State and society in Kerala)। उनके इस सत्याग्रह में कुछ प्रगतिशील हिन्दू और नारायण गुरु सहित उनके कुछ अनुयायी भी थे। गाँधी ने ट्रस्टी नम्मूदरी ब्राह्मणों से इस मुद्दे पर लंबी बहस भी की। उन्होंने खेद प्रकट करते हुए कहा - यह कहाँ तक उचित है कि किसी हिन्दू का महज इसलिए किसी रास्ते अथवा पवित्र स्थल से गुजरना अथवा जाना प्रतिबंधित किया जा सकता है कि वह जन्म से निम्न वर्ग में पैदा हुआ है। जबकि, गैर हिन्दुओं, अपराधियों और यहाँ तक कि कुत्ते-बिल्लियों तक को जाने की कोई मनाही नहीं है। पी. सुब्बारायन जैसे दक्षिण के नेताओं का मंदिर प्रवेश के समर्थन में लिया गया संकल्प दरअसल, गैर ब्राह्मण समाजों के अपने आत्मसम्मान की रक्षा का प्रयास भी रहा। हिन्दू दलितों के साथ जन्म के आधार पर किसी भी भेदभाव के खिलाफ संकल्प के रूप में 1932 में हुए पूना पैक्ट का इस दिशा में सैद्धांतिक स्तर पर ही सही बहुत बड़ा योगदान रहा। दक्षिण का काशी कहे जाने वाले मंदिरों के शहर नासिक में कालाराम मंदिर प्रवेश की मुहिम का जिक्र यहाँ बहुत जरूरी है। भैरव गायकवाड़, अमृतराव, देवराम नाइक जैसे सैकड़ों दलित नेताओं की एकजुटता और डॉ. अंबेडकर के नेतृत्व में नासिक

Scanned by CamScanner

सत्याग्रह के रूप में जाने-जाने वाले इस आंदोलन में सत्याग्रहियों की एक टुकड़ी महिलाओं की भी थी। 1-15 अप्रैल, 1930 तक प्रमुखता से चले इस सत्याग्रह में कई बार हिन्दुओं और दलितों में झड़पें हुईं। दलित नेताओं सहित दर्जनों दलित महिला नेत्रियों को भी कैद किया गया, जिसमें 75 वर्षीय पावली काले जैसी महिलाओं का जिक्र मिलता है।

नासिक सत्याग्रह में पुलिस और सरकारी हुक्मरानों का रुख दलित विरोधी ही रहा। लगभग छः वर्ष चले इस सत्याग्रह के बावजूद कालाराम मंदिर दलितों के लिए नहीं खोला गया, लेकिन दलित राजनीतिक चेतना की रणनीतिक भूमिका तैयार करने में इसका महत्त्वपूर्ण योगदान माना जाता है। हिन्दू वर्चस्व के खिलाफ, अपनी सामाजिक बराबरी एवं महत्त्व के लिए एकजुटता दिखाते हुए दलित महिलाओं का मंदिर प्रवेश सत्याग्रह में भाग लेना इसलिए भी अधिक महत्त्वपूर्ण था, कि वे दो मोर्चों पर एक साथ लड़ रही थीं। वर्षों की संघर्ष यात्रा को पहला कानूनी मंच त्रावणकोर के तत्कालीन महाराजा द्वारा दलितों सहित सभी हिन्दुओं को मंदिर प्रवेश की गारंटी की घोषणा कर त्रावणकोर रियासत की मंदिरों के दरवाजे सभी हिंदू वर्गों के लिए खोले जाने के रूप में मुहैय्या कराया गया (कुमार, आलोक प्रसन्ना, 2016)। इसके बाद तत्कालीन मद्रास प्रेसीडेंसी ने मंदिर प्रविष्टि प्राधिकरण और क्षतिपूर्ति अधिनियम,1939 पारित कर दलितों को मंदिर प्रवेश अधिकार की गारंटी दी।

पुरुषवादी एकाधिकार के खिलाफ महिलाओं का संघर्ष

भारतीय समाज में हिन्दू पुरुषों का एक बड़ा हिस्सा प्रचंड दैवीय शक्तियों का उपासक है। यहाँ दुर्गा, काली, महालक्ष्मी आदि को देवी अथवा आदि-शक्ति के रूप में पूजने वाला समाज अन्य स्त्रियों के मामले में अलग ही राय रखता है। हालाँकि, बहुत सारे लोग अपनी बेटियों का नामकरण इन देवियों से मिलते-जुलते नामों पर करते तो हैं। पर आश्चर्यजनक है कि उन्हीं कथित देवी तुल्य बेटियों को उन आदिशक्ति स्वरूपा देवियों की पूजा करने तक का हक पुरुषों के बराबर नहीं मिलता, क्योंकि वो साधारण स्त्रियाँ हैं। जबकि, पुरुषों (खासकर उच्चवर्णीय) के लिए कुंवारी देवियों अथवा ब्रह्मचारी देवताओं के मंदिरों में जाने की कोई मनाही नहीं है। लैंगिक भेदभाव और पुरुषवादी वर्चस्व की सनातनी सोच के चलते आजाद भारत के कई हिस्सों में आज भी महिलाओं का मंदिर के भीतरी हिस्से में प्रवेश निषेध है। जबकि, भारतीय संविधान की धारा 14,15, 19, 25 आदि के चलते भारत के किसी भी नागरिक के खिलाफ ऐसा भेदभाव संविधान विरोधी कृत्य है। बावजूद इसके, देश के तमाम धार्मिक स्थलों के दरवाजे कपोलकल्पित तर्कों के सहारे वर्षों

Scanned by CamScanner

से महिलाओं के लिए बंद हैं। हमारे सामाने कई ऐसे उदाहरण हैं - हरियाणा के कार्तिकेय मंदिर में उनके ब्रह्मचारी स्वरूप की पूजा होती है। इस मंदिर में महिलाओं का प्रवेश वर्जित होने के पीछे एक कहानी इस प्रकार गढ़ी गयी है कि, 'जब भगवान कार्तिकेय ध्यान कर रहे थे, तो देवी इंद्रा को उनसे ईर्ष्या हुई कि, कहीं ब्रह्मा उन्हें उनसे ज्यादा शक्तियाँ प्रदान न कर दें। इसलिए, उन्होंने कार्तिकेय का ध्यान भंग करने के लिए उनके पास खूबसूरत अप्सराएँ भेजीं।' जिससे भगवान कार्तिकेय नाराज हो गए और श्राप दे दिया कि, 'अगर कोई भी महिला उनके पास उनका ध्यान भंग करने के लिए आती है, तो वह पत्थर की हो जायेगी' (*पंजाब केसरी*)। इसी गढ़े गये तर्क के चलते भगवान कार्तिकेय के ब्रह्मचर्य को बचाये रखने के लिए महिलाओं को मंदिर के अंदर जाने से मनाही है।

केरल के सबरीमाला मंदिर, जहाँ भगवान अय्यप्पा की पूजा की जाती है, वहाँ भी अय्यप्पा के ब्रह्मचर्य की रक्षा हेतु उस उम्र की सभी महिलाओं के मंदिर प्रवेश पर रोक लगायी गयी है, जिन्हें माहवारी आने की संभावना हो सकती है। इसके पीछे भी ऐसी ही कहानियाँ गढ़ी गयी हैं, जो महिला जाति को अपमानित करती हैं। इसी तरह का छत्तीसगढ़ में मवाली माता मंदिर है। जनश्रुतियों के अनुसार, एक पुजारी को माता धरती से प्रकट होती दिखीं थीं तथा माता ने बताया कि वे अभी तक अविवाहित हैं इसीलिए, यहाँ महिलाओं के जाने की मनाही है। झारखंड के बोकारो में मंगल चंडी मंदिर, जहाँ देवी दुर्गा की पूजा होती है, वहाँ भी मंदिर से लगभग 100 फीट की दूरी पर सीमांकन किया गया है, जहाँ से आगे महिलाओं का प्रवेश वर्जित है। श्रद्धा-भाव से आयी महिलाएँ सीमांकन वाले स्थान से देवी की पूजा-अर्चना कर सकती हैं। असम में पतबाउसी सत्रा मंदिर की स्थिति भी कुछ ऐसी ही है। सुनने में आता है कि, यहाँ एक बार पूर्व प्रधानमंत्री इंदिरा गाँधी को भी अंदर जाने से रोक दिया गया था। जबकि पुरुष जाति देवी कामाख्या के योनि (निजी भाग) की पूजा कर सकते हैं या यह कहें कि पुरुषों को उस देवी की पूजा करने की पूरी छूट है, जिन्हें रक्तस्त्रावी (माहवारी) देवी भी माना जाता है। हिन्दू मान्यताओं के अनुसार देवी कामाख्या का सिद्ध शक्तिपीठ सती के इक्यावन शक्तिपीठों में से है, यहाँ भगवती की महामुद्रा (योनि-कुंड) स्थिति है। लेकिन, माहवारी के दौरान महिलाओं को उस (शक्तिपीठ) मंदिर के भीतर जाने की सख़्त मनाही है। यह कैसी विडंबना है कि, पितृसत्ता द्वारा जारी फतवों के चलते बहुतायत मंदिरों और दरगाहों को महिला भक्तों के लिए सीलबंद कर दिया गया है। जबकि, इन्हीं समाजों की लोक प्रचलित धार्मिक मान्यताएँ यह भी हैं कि देवी-देवताओं के लिए सभी बराबर हैं। बहुतायत धार्मिक संस्थाओं में महिलाओं को उनकी यौनिकता और माहवारी की वजह से (जोकि किसी भी स्त्री की

Scanned by CamScanner

स्वाभाविक शारीरिक प्रकृति का हिस्सा है) अपवित्र अथवा पापी घोषित कर प्रवेश निषेध किया जाना, नितांत पुरुषवादी पाखंड और घृणा का उदाहरण है।

भारतीयता के मनो-सामाजिक भूगोल पर धार्मिकता का प्रभावी हस्तक्षेप भारतीय पितृसत्तात्मक संरचना को लगातार पोषित करता रहा है। धर्म आधारित पारंपरिक रिवाजों को बचाने और धार्मिक गैर-बराबरी को चुनौती देने का मुद्दा हमेशा से भारतीय राजनीतिक एवं सामाजिक बहसों के केंद्र में रहा है। धार्मिक जगहों पर महिलाओं के प्रवेश को लेकर वर्षों से संघर्ष जारी है। माहवारी, ड्रेसकोड एवं लैंगिक पहचान के आधार पर हो रहे दुहराव पर लगातार प्रश्न उठते रहे हैं। महाराष्ट्र में इसका लंबा इतिहास रहा है। 'महाराष्ट्र अंधश्रद्धा निर्मूलन समिति' की अगुआई कर रहे नरेंद्र दाभोलकर भी कोल्हापुर महालक्ष्मी मंदिर में महिलाओं के प्रवेश हेतु लंबे समय तक संघर्षरत रहे। वर्ष 2016 में धार्मिक गलियारों से होकर राजनीतिक और सामाजिक हलकों में हस्तक्षेप करती महिलाओं की धार्मिक बराबरी के मूलभूत अधिकारों के हक की लड़ाई के दो महत्त्वपूर्ण मुकाम रहे। पहला, भूमाता ब्रिगेड की अध्यक्ष तृप्ति देसाई की अगुआई में नासिक में शनि शिगणापुर मंदिर के आंतरिक भाग में प्रवेश कर 400 वर्ष पुरानी रूढ़ि को तोड़ना और दूसरा, भारतीय मुस्लिम महिला आंदोलनधर्मी कार्यकर्ताओं की अगुआई में मुंबई स्थित हाजी अली दरगाह में प्रवेश का आंदोलन।

इन घटनाओं ने आजाद भारत में ऐसी पुरुषवादी रूढ़ियों के खिलाफ एक नई बहस को जन्म दिया। हालांकि, एक धड़ा इसे परंपरा, नैतिकता और धार्मिक मान्यताओं के खिलाफ मानता है, जबकि जेंडर समानता की लड़ाई में शामिल प्रगतिशील चिंतक और आंदोलनधर्मी कार्यकर्ता इसे धार्मिक समानता की बढ़ती माँग को महिला सशक्तीकरण के चश्मे से देख रहे हैं। उनका मानना है कि, यह लड़ाई किसी धर्म के खिलाफ नहीं, बल्कि सामाजिक व्यवस्था में व्याप्त पितृसत्ता के प्रभुत्व के खिलाफ मुहिम का जरूरी हिस्सा है, जो लगातार कमजोर समुदायों के मूलभूत अधिकारों का दमन नये-नये ढंग से करता आया है।

8 अप्रैल, 2016 को भूमाता ब्रिगेड की कार्यकर्ता प्रियंका जगताप और पुष्पक केवड़ेकर ने शिंगणापुर के शनि मंदिर के अंदरूनी हिस्से में प्रवेश कर शनिदेव को समर्पित काले रंग की पत्थर की मूर्ति पर पहली बार अभिषेक कर इतिहास रचा। इन युवा महिलाओं ने जीजाबाई, सावित्रीबाई फुले और अहिल्याबाई होल्कर जैसी क्रांतिकारी विदुषी महिलाओं के मोर्चे को कई कदम आगे बढ़ाते हुए मिसाल कायम की। तृप्ति देसाई ने इसे स्त्री शक्ति की जीत माना है। जेंडर, इकॉलाजी और दलित अध्ययन, श्रीशंकराचार्य संस्कृति विश्वविद्यालय की प्रो. के. एम. शीबा के अनुसार

Scanned by CamScanner

महिलाओं को कहाँ जाना है, कहाँ नहीं, इसका निर्धारण किये जाने का कोई तर्क नहीं है। आधुनिक लोकतान्त्रिक समाज में किसी महिला को कहा जाने से नहीं रोका जा सकता। उनके मुताबिक, ये सारी मान्यताएँ और पाबंदियाँ पितृसत्तात्मक विचारधारा को मजबूती प्रदान करने और महिलाओं को निर्णयकारी भूमिकाओं से बाहर रखने हेतु पुरुषों द्वारा गढ़ी गयीं हैं। सबरीमाला मंदिर में माहवारी की संभावित उम्र वाली सभी महिलाओं के प्रवेश निषेध का समर्थन करते हुए देवासम ट्रस्ट के अध्यक्ष प्रयार गोपालकृष्णन के इस बयान - ह्यजिस दिन किसी ऐसी मशीन की खोज हो जायेगी, जो यह जाँच कर सके कि महिला का मासिक धर्म नहीं चल रहा, उस दिन से अन्य महिलाओं के लिए मंदिर के द्वार खोल दिये जाएँगे,- के खिलाफ महिलाओं ने सोशल मीडिया पर हैशटैग के साथ; हैपी टू ब्लीड (Happy to bleed) मुहिम चलाया। माहवारी से जुड़ी सामाजिक भ्रांतियों को तोड़ने और महिलाओं को अपनी जागीर समझने वाली पुरुषवादी रूढ़ियों के खिलाफ निकिता बजाज ने इस मुहिम की शुरुआत कर बहुत सारी युवा महिलाओं का आह्वान किया, कि वे अपने प्रोफाइल या कैम्पेन पेज पर सेनेटरी नैपकिन के साथ तस्वीरे डालें। इस मुहिम में बहुत सारी महिलाएँ शामिल हुईं। 'फेमिनिज्म इन इंडिया' की संस्थापक जाप्लीन ने इस मुहिम का समर्थन करते हुए कहा कि "किसी मंदिर, चर्च अथवा मस्जिद जाने के लिए मेरा धार्मिक होना या न होना मायने नहीं रखता, मेरी वजाइना (निजी अंग) से खून बह रहा है या नहीं इसकी परवाह किये बिना मैं किसी भवन, संस्थान या मंदिर में जा सकती हूँ, क्योंकि यह मेरा अधिकार है। यदि मेरी वजाइना से रक्तस्रावित होना विडंबनापूर्ण है, तो मुझे एक महिला के रूप में क्यों स्वीकारते हो? अगर ऐसा नहीं होता तो मुझे बांझ कहकर बर्खास्त कर दिया गया होता। इसलिए, अशुद्धता की बकवास बंद करो। तुम्हारे अस्तित्व का होना इसी रक्त का परिणाम है।(साभारः द *टेलीग्राफ*)" सार्वभौमिक मानवाधिकार की घोषणा और जेंडर न्याय एवं बराबरी से जुड़े संवैधानिक प्रावधानों के बावजूद दुनियाभर की धार्मिक मान्यताओं में मासिक स्राव को शुद्धता से जोड़ा जाता है। दक्षिण एशियाई देशों में ऐसी जड़ताएं और पितृसत्तात्मक वर्चस्व अपेक्षाकृत अधिक प्रभावी है।

महिलाओं द्वारा किये जा रहे ऐसे संगठित आंदोलन पुरोहितवादी वर्चस्व की नींव को कहीं न कहीं कमजोर करने का माद्दा रखते हैं। मंदिर प्रवेश से जुड़ी नीलिमा वर्तक और विद्याबाल की जनहित याचिका पर सुनवाई करते हुए बाम्बे उच्च न्यायालय के जस्टिस डी. एच. वाघेला और एम. एस. सोनक की खंडपीठ ने 'महाराष्ट्र हिन्दू पूजा स्थल (प्रवेश अधिकार) अधिनियम 1956' के हवाले से कहा कि कोई ऐसा कानून नहीं जो महिलाओं को किसी स्थान पर जाने से रोकता हो।

Scanned by CamScanner

उन्होंने कहा यदि, पुरुष श्रद्धालु किसी भी धार्मिक स्थल पर पूजा के लिये जा सकते हैं, तो महिलाएँ क्यों नहीं। ऐसे भेदभाव न हों यह सुनिश्चित करना राज्य की जिम्मेदारी है। 21वीं सदी के दूसरे दषक में धार्मिक बराबरी की माँग कर रही महिलाएँ दरअसल, उसी पुरुषवादी धार्मिक मान्यताओं को चुनौती देने की लड़ाई लड़ रही हैं, जिसने सदियों से महिलाओं को यौनिकता, यौन-शुचिता, शुद्धता और उनके पुनरुत्पादन की क्षमता को उनकी कमजोरी साबित करते हुए, उन्हें हमेशा दोयम समझता रहा है। और इसके लिए महिलाएँ, उसी धर्म और धार्मिकता को अपनी लड़ाई का औजार बनाकर अपने ऊपर थोपी गयी तमाम वर्जनाओं को तोड़ने का कार्य कर रही हैं। मंदिर प्रवेश आंदोलन से जुड़ी महिलाएँ धर्म का महिमामंडन करती नहीं, वरन अपने हक की लड़ाई लड़ती नजर आती हैं। धार्मिकता की नींव पर टिकी भारतीय पितृसत्ता के आधिपत्य के खिलाफ महिला आंदोलन की एक धारा यह भी कही जा सकती है।

संदर्भ सूची

- शर्मा, गीतेश,(2003), *धर्म के नाम पर,* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.।
- सरोज, रामचन्द्र, (2007), *हिंदू वर्ण-व्यवस्था पुनर्विचार और विश्लेषण,* इलाहाबाद : राका प्रकाशन।
- गुप्ता, रमणिका-थोराट, विमल, (2009), *स्त्री नैतिकता का तालिबानीकरण,* दिल्ली : नवचेतन प्रकाशन।
- श्रीमाली, कृष्ण मोहन, (2005), *धर्म, समाज और संस्कृति,* दिल्ली : ग्रंथशिल्पी प्रा. लि.।
- रामबाई, पं.- जोशी, शंभू (अनु.), (2006), *हिंदू स्त्री का जीवन,* मेरठ :संवाद प्रकाशन।
- अमीन, शाहिद-पांडेय, ज्ञानेंद्र,(2007), *निम्नवर्गीय प्रसंग भाग- 1,* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.।
- आर्य, साधना, मेनन, निवेदिता, लोकनीता, जिनी. (2010), *नारीवादी राजनीति, संघर्ष एवं मुद्दे,* दिल्ली : हिंदी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय।
- अमीन, शाहिद-पांडेय, ज्ञानेंद्र, *निम्नवर्गीय प्रसंग भाग-2,* नई दिल्ली : राजकमल प्रकाशन प्रा. लि.।
- *Knudegaard, Ingfrid-Elise(2010), "Gandhi's Vision for Indian Society: Theory and Action (The temple-entry campaign and the travelling campaign against untouchability, 1932-1934)" Master Thesis in History Department of Archaeology, Conservation and History; University of Oslo, accessed on 30 May 2017 https://www.duo.uio.no/bitstream/handle/10852/23275/IngfridxKnudegaardxmasteroppgavexixhistorie.pdf?sequence=1*
- *"Gogoi, Meenakshi(2016): "Discrimination Against Women's Right To Temple Entry In India: A Critique," Countercurrents.org, 26 May, accessed on 30 May 2017- http://www.countercurrents.org/gogoi260516.htm*
- *"Sanghani, Radhika(2015): "Indian women protest temple that wants to scan them for 'impure' periods," The Telegraph, 23Nov, accessed on 20Oct 2017 http://www.telegraph.co.uk/health-fitness/body/indian-women-protest-temple-that-wants-to-scan-them-for-impure-p/*
- *"Sharma, Nishtha(2016): " Religion And Feminism: India's Fight For Religious Desegregation," The Organization for World peace, 29May, accessed on 28 Oct 2017, https://theowp.org/reports/religion-and-feminism-indias-fight-for-religious-desegregation/*
- *"Ittyipe, Minu (2016): "Faith, Forbiddance And The Female" Outlook,12 April,*

Scanned by CamScanner

accessed on 28 Oct 2017, https://www.outlookindia.com/website/story/faith-for-biddance-and-the-female/296813

- "Agnes, Flavia(2016): "Temple or Dargah, Restrictions on Women Are Nothing But Ways of Imposing Patriarchy," The Wire, 28Feb, accessed on 25 Sep, 2017, https://thewire.in/21007/temple-or-dargah-restrictions-on-women-are-nothing-but-ways-of-imposing-patriarchy/
- "Kumar, Alok Prasanna (2016) "Women in Shani Shingnapur temple: A brief history of entry laws and how times are changing" Firstpost, 12 Apr, accessed on 25 Sep, 2017, http://www.firstpost.com/india/women-in-shani-shingnapur-brief-history-of-temple-entry-laws-and-how-times-are-changing-2723582.html
- "When god is out of reach for women; Mumbai Bureau, The Hindu, accessed on 25 Dec, 2017, http://www.thehindu.com/news/cities/mumbai/when-god-is-out-of-reach-for-women/article7930334.ece
- "Shanmathi.R & Tarunika.S (Vol.4) "Ingression of Women in Place of worship an Equality Dimension," Law Mantra, (I.S.S.N 2321- 6417). accessed on 20 Sep, 2017, http://journal.lawmantra.co.in/wp-content/uploads/2016/11/16.pdf
- "Dattatrye, Manoj &other(2016) "Shani Shingnapur row: How a 400-year-old tradition fell apart in barely four months" The Indian Express, 8 April, accessed on 12 June, 2017, http://indianexpress.com/article/explained/shani-shingnapur-temple-row-trupti-desai-ahmednagar-maharashtra/
- "Manmathan, M. R.(2013), "Temple as the Site of Struggle: Social Reform, Religious Symbols and the Politics of Nationalism in Kerala," Scientific research,June, accessed on 12 April, 2017, http://file.scirp.org/Html/33112.html
- "The Economics of Temple Culture: A short introduction,
- accessed on 20 june, 2017, http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/66859/7/07_chapter%202.pdf
- "Bhattacharya, Aparajita (2014), "Notions of Impurity and their operations in the society of early India: Some Reflections based on the Laws of Manu," IOSR Journal Of Humanities And Social Science (IOSR-JHSS), March, accessed on 20 june, 2017, http://www.iosrjournals.org/iosr-jhss/papers/Vol19-issue3/Version-5/D019351721.pdf
- "Appadurai, Arjun and Appadurai, Carol Breckenridge (2011) "The south Indian temple: authority, honour and redistribution", Contributions to Indian Sociology, 29 April, accessed on 20 june, 2017, http://www.uio.no/studier/emner/hf/iakh/HIS2172/h11/undervisningsmateriale/HIS2172_Appadurai.pdf
- "Major Temple Entry Events, (http://shodhganga.inflibnet.ac.in/bitstream/10603/111318/16/15_chapter%208.pdf)
- "Role Of Dalit's in Temple Entry Movement of Nashik' by Atul A. Ohal Global Online Electronic International Interdisciplinary Research Journal (GOEIIRJ) {Bi-Monthly} Volume-I, Issue-III October 2012; ISSN : 2278 - 5639, (http://www.goeiirj.com/upload/sep2012/13.pdf : access 12/09/2017, 03;30pm)
- "iatkc dsljh http://www.punjabkesari.in/national/news/women-no-entry-in-these-temple-508717
- "https://archive.india.gov.in/hindi/knowindia/state_uts.php?id=64 accessed on 30 Dec, 2017
- "https://khabar.ndtv.com/
- "http://www.bbc.com/hindi

Scanned by CamScanner